Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 5, April-2019, ISSN 2230-7540

स्वामी विवेकानंद – एक सर्वमान्य व्यक्तिव

Dr. Vivek Kumar*

Professor and Head, Swami Vivekananda Chair Central University, Jammu

सार – *स्वामी विवेकानंद के बचपन से ही कुछ क्रिया कलाप इस प्रकार से थे कि माता-पिता, बहन-भाई, स्कूल के विघार्थी-अध्यापक, तथा कक्षा के साथी विघार्थियों को कई प्रकार का समय पर आश्चर्य होता था, और किसी भी विचारशील प्राणी के लिए तथा अध्यात्मिक व्यक्ति के लिए बरबस से ही मुंह से अक्समात निकलता था कि 'यह बच्चा विलक्षण है और पूर्व जन्म का उच्चकोटि का सन्यासी एंव विद्वान रहा है'। उनकी नट-खट बातों-तर्कशील बातों में कुछ अलग ही झलकता था। उनका व्यक्तित्व सार्वभौमिक भले ही बाद में लोगों को तथा सारे विश्व को देखने को मिला है परन्तु भारतीय दर्शन संस्कृति-धर्म पर कुछ प्रशनों एंव शंकाओं के साथ-साथ सदैव गौरव ही उनकी सारी चर्चाओं परिलक्षित होता रहा।*

---------------------------------x---------------------------------

स्वामी विवेकानंद एक सार्वभौमिक व्यक्तित्व एंव सर्व ग्रही विचारों का विषय निः संदेह न केवल आकर्षक है, वरन् अत्यन्त प्रासंगिक भी है। उनका व्यक्तित्व असाधारण तथा आधुनिक भी था। जब हम विवेकानंद की बात करते हैं तो यह बात किसी पौराणिक देवता अथवा कालपनिक नायक की नही हैः वरण यह एक ऐसे व्यक्ति की है जो हमारे अपने ही काल में रहा तथा जिसने आधुनिक जगत की समस्याओं व सम्भावनाओं के प्रति अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया व्यक्त की। वे न केवल आधुनिक थे, वरण उन्हें विगत इतिहास में घटित मानवीय विकासों को भी अपने आप में समा लिया हुआ था, और उसके साथ ही साथ महान व्यवहारिकता का भी सम्मिश्रण देखने को मिलता है। उनके व्यक्तिव की यह विशेषतांए तथा उनके युक्तिसंगत व सार्व लौकिक उपदेश सम्पूर्ण जगत में हर प्राणी के लिए विवेकानंद का अध्यन अत्यन्त प्रेरक व उपयोगी बना देते हैं। 1902 में उनके देहावासन के तीन वर्ष बाद ही रूस में उनके ग्रन्थों का अध्यन होने लगा था।रूसी विचारकों मे रालस्राय ने ही विवेकानंद व उनके गुरूदेव श्री रामकृष्ण का सर्वाधिक प्रभाव अनुभव किया था और उन्हें अपने निजी ग्रन्थालय की उनकी पुस्तकों में विविध टिप्पणियां लिखकर यह प्रभाव व्यक्त किया है।

अमरीकी जनता विवेकानंद का अध्यन इसलिए करती है कि पिछली ताब्दी के अन्तम दशक के चार वर्षो तक वह वहाँ के तीव्र एंव सक्रिय जनजीवन तथा विचार-जगत के साथ अत्यन्त धनिष्ठतापूर्वक घुलमिल गये थे और इसकेुलस्वरूप अमरीकी जनमानस व चेतना पर एक अमिट छाप छोड गये थे। इंग्लैंड में भी उन्होंने काफी सक्रियता पूर्वक कार्य किया था और जर्मनी, युनान आदि अन्य यूरोपीय देशों का भी प्रवास किया था। उनके कन्याकुमारी के शिला से लेकर भक्ति बौद्व तथा अमेरिका के शिकागो के अन्तराष्ट्रीय धर्म सभा कें प्रथम सम्बौधन से लेकर अन्तिम श्वास तक भारत तथा सम्पूर्ण विश्व के अनेक देशों में सम्बोधन तक एक महान दार्शनिक ही नही वरण् एक उच्चकोटि के सन्त तथा समाज सुधारक के नाते भी एक विलक्षण व्यक्तित्व के मालिक एंव सर्वग्रही विचारों के अधिष्ठता के रूप में भी अलग पहचान दीखती है।

इस प्रकार विवेकानंद एक सार्वभौमिक सिद्व होते है और जब हम उनका अध्यन करते है तो हम समकालीन मानवीय समस्याओं व आकंाक्षाओं पर उनकी प्रबल पकड़ देखकर दंग रह जाते हैं।1863 ई0 से 1902 ई0 के बीच उन्होंने 39 वर्ष 7 महीनों का अपना संक्षिप्त जीवन बिताया, परन्तु उस अल्प अवधि में ही उन्होंने एक ऐसा तीव्र जीवन बिताया, जिसने 'प्राच्य व पाश्चात्य' जगत के मानवीय इतिहास पर एक अमिट छाप छोड़ दी है।उनकी इस प्रबल शक्ति व अदम्य क्रियाशीलत से कोई भी बिना प्रभावित हुए नही रह सकता जिसने उनके जीवन काल में ही लाखों-करोड़ो भारतीयों व पश्चात्यवासियों की विचारधारा को प्रभावित किया और जो उनके देहत्याग के बाद अब भी कोटि-कोटि लोगों को प्रेरणा प्रदान किए जा रही है। उन्होंने 9 वीं शताब्दी के महान दार्शनिक' शंकराचार्य ने, जिन्होंने 32 वर्षो का संक्षिप्त जीवन बिताया था, एक युवक के रूप में शारीरिक व्यायाम तथा मुक्केबाजी में उनकी रूचि ने और उनकी विपुल बौद्विकता,

आध्यात्मिकता तथा सौंदर्य बौध की अभिरूचियों व उपलब्धियों के साथ ही उनके जीवन में बहुरूपता थी, इन सब ने स्वामी जी को प्राच्य और पाश्चात्य का अत्यन्त व्यवहारिक एंव सर्वग्रही बना दिया था।

स्वामी विवेकानंद ने अपने मानवतावाद का आधार मानव की गहराइयों के तत्वज्ञान को बनाया जिसे वेदान्त में आध्यात्मिक विघा कहा जाता है, औा जिसे प्रसिद्व जी वैज्ञानिक तथा मानवतावादी सर जुल्यिन हक्सले ने 'मानवीय सम्भावनाओं का विज्ञान' की संज्ञा दी थी और आशा व्यक्त की थी कि आधुनिक पाश्चात्य भौतिक विज्ञान उसी दिशा में विकसित होगा। यह एक मावव शास्त्र है जिस पर भारतवर्ष ने अब से तीन हज़ार वर्षों से भी पहले अपने शाश्वत साहित्य उपनिषदों में शोध व विकास किया था। इस विज्ञान के प्रणेता थे महान ऋषिगण-जिनमें पुरूष थे, नारियाँ थी, यहाँ तक कि बच्चे भी थे, बुद्विजीवी, शासक और विघार्थी भी थे, जिनकी एकमात्र धुन थी 'सत्य की खोज औा मानव का कल्याण'। उनकी मनोवृति, दृष्टिकोण और स्वभाव आज के भौतिक विज्ञानियों से काफी मिलते जुलते थे। दोनो के बीच अन्तर केवल इतना ही है कि जहाँ आज के भौतिक विज्ञानी बह्रा जगत् में शोघ करते हैं, इन प्रचीन भारतीय ऋषियों ने मनुष्य की आन्तरिक प्रकृति के रहस्मय जगत् पर शोघ किया था, पर उनके पीछे वैसी ही परिपूर्ण तथा आलोचनात्मक दृष्टि थी। वे लोग मानव व्यक्तित्व की बहुत गहराइयों तक पैठे और यह पता लगाया कि मनुष्य के पंचभौतिक शरीर के पीछे, मानसिक प्रणाली के पीछे एक 'अमर अनन्त और आध्यात्मिक' केन्द्र भी है। मानव व्यक्तित्व के इस ज्ञान को 'शुद्व विज्ञान' कहते है और इसे अपने जीवन व कर्म में अपनाने की तकनीक बिधि को इसका 'व्यवाहरिक विज्ञान' अपनी इन महान खोजों केुलस्वरूप उन्होंने महान 'वेदान्त- दर्शन' का विकास किया।

इसी प्रकार आध्यात्मिकता के साथ समस्त मानवीय सम्भावनांए वेदान्त में छिपी हैं। वेदान्त का कथन है कि वह इन महान सम्भावनाओं को व्यक्त करने के लिए विवेकानंद को उपनिषदो में सर्वाधिक प्रिय-कठोपनिषद के शब्दों में (1.3.12) एश सर्वेशु गु

मानव जाति के एक आध्यात्मिक शिक्षक के रूप में उनके भीतर जो मौलिकता थी, वह मानव के प्रति उनकी गहरी अभिरूचि तथा पूर्ण मानवीय विकास तथा पूर्णता के लिए उनकी अथक कर्मठता में निहित थी और हमें यह समझने की भूल नही करनी चाहिए कि उनकी यह अभिरूचि तथा कर्मठता अन्य धर्माचार्यों के समान ,लोगों के अत्मिक उद्वार में सहायता देने तक ही सीमित थी, बल्कि उनका प्रसार अर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदि मानव जीवन के सभी पहलुओं तक हुआ था, और इस कारण वह 'धर्म' शब्द के संकीर्ण दायरे में नही समाती।वस्तुतः यह सर्वागीण मानवीय रूचि स्वामी विवेकानंद के जीवन तथा कार्यों का केन्द्र बिन्दु बनी।

एक सन्यासी के रूप में अपनी मातृ भूमि के ओर-छोर का भ्रमण करके, भारत वर्ष के दक्षिणी किनारे पर पहुंचे, और वहाँ तीन समुद्रों के संगमक्षेत्र में स्थित कन्याकुमारी के निकट सागर के वक्ष पर शिला खण्ड पर, जिसे कि अब विवेकानंद शिला कहते हैं और जो अब एक अत्यन्त भव्य स्मारक से सुशोभित है, वह ध्यान करने के लिए बैठे। उस समय उनके ध्यान का मूल विषय पूर्वकाल के अन्य धर्माचार्यो के समान, आकाश में अविस्थत अथवा ह्रदय में विराजमान कोई देवता अथवा कोई इन्द्रियातीत तत्व न था, वरण् वह था-धरती का मानव, उसकी महिमा व गरिमा के, जिसकी अनुभूति भारतीय ऋषियों ने 'अमृतस्य पुत्राः' -अमृत के पुत्र के रूप में की थी उसे, पुनः प्रतिष्ठित किया जा सके।विवेकानंद के जीवन का यह पक्ष उन्हें, प्रत्येक आधुनिक मानव के लिए, अध्यन व षोध का एक विस्तृत, गहन तथा चुनौती भरा विषय बना देता है। उन्होंने अनुभव किया कि उच्च वर्गों के सतत शोषण व दमन केुलस्वरूप भारत की कोटि-कोटि बहुत संख्या में आम जनता, उन्ही की दुःख भरी भाषा में पशुतुल्य हो गयी है। अमेरिका से लिरबे एकपत्र में अपने ह्रदय की व्यथा उड़ेलते हुए वे कहते हैं (विवेकानन्द साहित्य, खण्डा, प्रथम सं0,पृष्ठ 403-5)

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नही है जो हिन्दू धर्म नही है जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्तर से मानवता के गोरव का उपदेश करता हो, और जाति वालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। प्रभु ने मुझे दिखा दिया है कि इसमें धर्म का कोई दोष नही है, वरन् दोष उनका है, जो उन पर तरस आता है। उनकी नींद किसी तरह टूटती ही नही। सदियों के अत्याचार केुलस्वरूप जो पीड़ा, दुःख, हीनता, दारिद्रय की आह भारत -गगन में गूंज रही है, उनसे उनके सुखमय जीवन को जबरदस्त आघात नही लगता।युगों के जिस मानसिक, नैतिक और शारीरिक अत्याचार ने ईश्वर के प्रतिभारूपी मनुष्य को भारवाही पशु भगवती की प्रतितारू पिणी रमणी को सन्तान पैदा करने वाली दासी, और जीवन को अभिशाप बना दिया है उसकी वह कल्पना नही कर पाते। परन्तु ऐसे भी अनेक मनुष्य हैं, जो देखते हैं, अनुभव करते हैं, और दिलों में खून के आंसू बहाते हैं-जो सोचते है कि इसका इलाज है, और किसी भी कीमत पर, यहाँ तक कि अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इन्हें हटाने को तैयार है। आश्चर्य की बात है कि सारे का सारा प्राचीन भारतीय

www.ignited.in

दर्शन हर प्रकार से मानवतावादी समाज का गठन करने में असफल रहे। भारत इस बहुत गहरे मानवीय दर्शन का उद्गम स्थल होने के बावजूद स्वंय ही इस वैदान्तिक मानवतावाद उत्साहपूर्वक तथा व्यापक रूप से अपनाकर अपने स्वंय की मानवीय समस्याओं को हल करने में असफल हुआ है, तथा वह आत्मा के रूप मे मानव की महिमा, स्वाधीनता, समानता, समता व स्वाभिमान को बनाये रखते हुए एक पूर्ण मानवतावादी समाज-व्यवस्था विकसित करने में असमर्थ रहा है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार कि भारत इस गू

उपर्युक्त चार प्रभावों को लेकर और सारी अध्यात्मिक शक्तियों को विकसित कर स्वामी विवेकानन्द 1893 ई0 में शिकागों में आयोजित विश्व धर्म सभा में मानवत्मा को दिव्यता की घोषणा करते हुए वेदान्त की सिंह-गर्जना के साथ आधुनिक जगत् पर टूट पड़े थे। उनका व्यक्तित्व न केवल धर्म के इतिहास में, वरन् मान व उसकी प्रगति के इतिहास में भी अभूतपूर्व है। रोमाँरोला ने उन्हें 'आध्यात्मिक जगत के नेपोलियण' का स्थान देते हुए, उनके सुक्ष्मदृष्टि के सार्वभौमिक प्रभाव का वर्णन किया है

संसार हमारे देश का अत्यन्त ऋणी है।संसार के अन्य देशों में सभ्यता का विकास हुआ है। पुराने समय में और आजकल भी किसी राष्ट्र की गतिशील जीवन तंरगो ने महान शक्तिशाली सत्य के बीजों को चारों और बिखेरा है परन्तु यह सब हुआ है सेना समूह की सहायता से।बिना रक्त-प्रवाह से कोई भी नया भाव आगे नही बगड़ा करके किसी अन्य देश को पराजित नही किया है-इसका शुभ आर्शीवाद हमारे साथ है और इसी से हम अभी तक जीवित हैं। भारत का आध्यात्मिक ज्ञान-दान ही विश्व को बार-बार मिलता रहा है।

स्वामी विवेकानन्द ने इसे भारतीय मानवतावाद का एक मधुरुल बताया। सम्पूर्ण एशिया में बौद्व धर्म का शान्तिपूर्वक विस्तार भी इसी का एक उदाहरण है। भारत ने कभी भी अपनी संस्कृति का विस्तार तलवार की नौक पर नही किया अपितु अपनी संस्कृति सभ्यता की श्रेष्ठता तथा गुणों के आधार पर और उसमें भी अपनी नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति के आधार पर ऐसा किया। स्वामी विवेकानन्द आधुनिक पाश्चात्य विचार धारा के मानवतावादी व बौद्विक सम्पदाओं में तथा विज्ञान, राजनीति व अर्थशास्त्र में उसके अवदानों से काफी प्रभावित थे। वे आधुनिक जगत् के सन्दर्भ में मानवीय सम्बन्धों के अन्तराष्ट्रीय स्वरूप के बारे में पूर्णतः सजग थे। वे ऐसे प्रतिक्रिया वादी संकीर्ण देश भक्त नही थे, जो अपने राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों के सम्पर्क से दूर ले जाते अथवा जो अपने उद्वत राष्ट्रीयतावाद के रथ में सवार होकर अन्य राष्ट्रों की स्वाधीनता व स्वाभिमान को कुचलते हुए निकल जाते जेसा कि मुख्यतया इस्लाम और कहीं ईसाइत ने भी ऐसा किया। उन्हें भारत से अतीव प्रेम था, परन्तु समग्र मानवता से भी वे समान आवेग के साथ प्रेम करते थे।

भारत का सारे विश्व में प्रतिनिधित्व कर रहे थे इसलिए वेद-उपनिषद, गिता-महाभारत रामायाण आदि तथा ग्रन्थों के मूल तत्वों पर ही सर्वत्र चर्चा कर रहे थे।स्वामी जी के अनुसार समस्त अनुशासन का मूल मंत्र क्या है? 'नाहं नाहं, त्वमसि त्वमसि (मैं नही, मैं नही-तू ही,तू ही)' हमारे पीछे जो अनन्त विघमान है, उसने अपने को बहिजर्गत् में व्यस्त करने के लिए इस 'अंह' का रूप धारण किया है।उसी से इस क्षुद्र ' मैं' की उत्पत्ति हुई है। अब इस मैं को फिर पीछे लोटकर अपने अनन्त स्वरूप में मिल जाना होगा। जितनी बार तुम कहते हो मैं नही, मेरे भाई, वरन् तुम नही' उतनी ही बार तुम लौटने की चेष्टा करते हो, और जितनी बार तुम कहते हो' तुम नही, मैं, उतनी बार अनन्त को यहाँ अभिव्यक्त करने का तुम्हारा मिथ्या प्रयास होता है। इसी से संसार में प्रतिद्वन्दिता, संघर्ष और अनिष्ट की उत्पत्ति होती है। पर अन्त में त्याग का आरम्भ होगा ही। यह 'मैं' मर जाएगा। अपने जीवन के लिए तब कौन यत्न करेगा? यहाँ रहकर इस जीवन के उपभोग करने की व्यर्थ वासना और फिर इसके बाद स्वर्ग जाकर इसी तरह रहने की वासना-अर्थात् सर्वदा इन्द्रिय और इन्द्रिय-सुखों में लिप्त रहने की वासना ही मृत्यु को लाती है।

हम हीन होकर पशु हो गये हैं। अब हम फिर उन्नति के मार्ग पर चल रहे हैं, और इस बन्धन से बाहर होने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर अनन्त को यहाँ पूरी तरह अभिव्यक्त करने में हम कभी समर्थ न होंगे। हम प्राणपण से चेष्टा कर सकते हैं, परन्तु देखेंगे कि यह असम्भव है। अन्त में एक समय आएगा, जब हम देखेंगे कि जब तक हम इन्द्रियों में आबद्व हैं, तब तक पूर्णता की प्राप्ति असम्भव है। तब हम अपने मूल अन्नत स्वरूप की ओर वापस जाने के लिए पीछे लोट पड़ेंगे। इसी लौट आने का नाम है 'त्याग'।तब हम इस जाल में जिस प्रक्रिया द्वारा पड़ गये थे, उसको उलटकर उसमें से हमें बाहर निकल आना होगा। तभी नीति और दया-धर्म का आरम्भ होगा। (ज्ञानयोग-पृ0 288)

सृष्टि के भीतर दो शक्तियां पास-पास ही काम कर रही हैं। जहाँ एक शक्ति देखोगे, वहंा दूसरी भी दीख पड़ेगी।एक स्वार्थपरता है और दूसरी निःस्वार्थपरता।एक है ग्रहण, दूसरी त्याग।एक लेती है, दूसरी देती है।

क्षुद्रतम प्राणी से लेकर उच्चतम प्राणी तक समस्त ब्राह्राण्ड इन्ही दोनो शक्तियों का लीली क्षेत्र है। इसके लिए किसी

प्रमाण की आवश्यकता नही-यह स्वतः प्रमाण है।समाज के कुछ लोगों को यह कहने का क्या अधिकार है कि दुनिया का सारा कार्य और विकास इन दोनो शक्तियों में से एक ही शक्ति पर-प्रतिद्वन्दिता एंव संघर्ष पर ही आधारित है? यह बात कह देने का उन्हें क्या अधिकार है कि जगत का सारा कार्य राग, द्वेश; विवाद और प्रतिद्वन्दिता के उपर ही अधिष्ठित है? यह सारी प्रवृत्तियाँ ही इस जगत के अधिकांश व्यक्तियों को संचालित करती हैं इसे हम अस्वीकार नही करते। किन्तु उन्हें दूसरी शक्ति को बिलकुल न मानने का क्या अधिकार है? और क्या वे इस अस्वीकार कर सकते हैं कि यह प्रेम, अंहशुन्यता अथवा त्याग ही जगत की एकमात्र भावरूपिणी शक्ति है? दूसरी शक्ति इस 'नांह' अथवा प्रेम-शक्ति का ही विपरीत रूप से प्रयोग करना है और उसी से प्रतिद्वब्दिता की उत्पत्ति होती है। अशुभ की उत्पत्ति भी निःस्वार्थपरता से होती है, और अशुभ का परिणाम भी शुभ के अतिरिक्त और कुछ नही है।यह केवल मंगल-विघायिनी शक्ति का दुरूप्योग मात्र है।एक व्यक्ति जो दूसरे की हत्या करता है वह भी प्रायः अपने पुत्रादि के प्रति स्नेह की प्रेरणा से ही एंव उनके लालन-पालन के लिए।अपना प्रेम लाखों व्यक्तियों से हटाकर वह केवल अपनी सन्तान के प्रति दर्शाता है, इस कारण उसका प्रेम ससीम भाव में परिणत हो जाता है किन्तु ससीम हो या असीम, वह मूलतः ही प्रेम है।अतएव समग्र जगत की परिचालक, जगत में एक मात्र प्रकृत और जीवन्त शक्ति वही एक अद्भुत वस्तु है-वह किसी भी आकार में व्यक्त क्यों न हो-और वह है प्रेम, निःस्वार्थपरता तथा त्याग। (व्यवहारिक जीव में वेदान्त-पृ0 89-91)

स्वामी जी जानते थे कि किसी राष्ट्र की शक्ति उसके आकार या धन पर नही, अपितु उसके चरित्र पर निर्भर करती है। उन्हें आशा थी कि भारत इस बात का एक उदाहरण प्रस्तुत करेगा कि किस प्रकार विज्ञान तथा धर्म को सम्मिलन हो सकता है-जिसमें विज्ञान मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ती करेगा और धर्म उसकी नैतिक तथा आध्यात्मिक आवश्यकताओं की। यह आवश्यक नही कि एक धनाद्वय व्यक्ति नैतिक भी हो।स्वामी जी ने कहा-"मनुष्य निर्माण ही मेरा जीवनोद्देश्य है।" उन्हें बोध हुआ कि किसी भी समाज में यदि उसके मानवीय घटक भले तथा सबल नही है, तो वह टिक नही सकता। वे पश्चमी दुनिया की कर्मठता, संगठन क्षमता औा विज्ञान तथा प्रौघोगिकी के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों से प्रभावित थे।परन्तु उन्होंने उन लोगों की इन्द्रिय सुखों के प्रति घोर आसक्ति तथा नैतिक विकास के विषय में उदासीनता भी देखी। वे जानते थे कि किसी समाज में जब तक भौतिक समृद्वि तथा नैतिक विकास के बीच सही सुन्तुलन नही होता, तब तक व्यक्ति को शान्ति नही मिल सकती और उस समाज की सर्वागीण उन्नति भी नही हो सकती।(मेरा भारत, अमर भारतपृ010)

पश्चिम में आने से पहले मैं "भारत से केवल प्रेम ही करता था, परन्तु अब (विदेश से लौटते समय) मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की धूली तक मेरे लिए पवित्र है,भारत की हवा तक मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए पुण्यभूमि है, तीर्थस्थान है।" मेरी यह जन्मभूमि-पशु-मानव, को देव-मानव में रूपाप्तरित करने के अपने यशोपूरित लक्ष्य को पाने हेतु- जिसे धरती या आकाश की कोई शक्ति रोक नही सकती।स्वामी विवेकानन्द एक अधीर व्यक्ति थे और जानते थे कि भारत को साहस तथा आत्मविश्वास की आवश्यकता है।समस्यांए भारत की हैं और स्वंय भारत को ही उनका समाधान ढूंढ़ा। प्रत्येक ओजस्वी भाव के प्रचार के साथ असंख्य लोगों का हाहाकार, अनाथों और असहायों का करूण-क्रन्दन और विद्ववाओं का अजस्त्र अश्रुपात होते देखा गया है। मुख्यतय इसी उपाय द्वारा अन्यान्य देशों ने संसार को शिक्षा दी है परन्तु इस उपाय का अवलम्बन किये बिना ही भारत हज़ारों वर्षो से शन्तिपूर्वक जीवित रहा है।जब युनान का अस्तित्व नही था, रोम भविष्य के अन्धकार गर्भ में छिपा हुआ था....उस काल से लेकर अब तक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत में प्रसूत हुए हैं, पर उनका प्रत्येक शब्द आगे शन्ति और पीछे आर्शीवाद के साथ कहा गया है।संसार के सभी देशों में केवल एक हमारे देश ने लड़ाई-झगड़ा करके किसी अन्य देश को पराजित नही किया है वरन् अती प्राचीन संस्कृति के सद्गुणों के कारण भारत विश्व गुरू रहा है।

स्वामी विवेकानन्द की स्वदेश में मानवीय विकास की परिकल्पना एक अलगावपूर्ण राष्ट्रीय सन्दर्भ में नही थी, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विराट सन्दर्भ में थी। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता की धारणा के अन्तर्राष्ट्रीय सत्य के रूप में स्वीकृत होने से बहुत पहले ही इसकी हिमायत की थी।1897,ई0 में मर्दास में प्रदत अपने व्याख्यान भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव में उन्होंने वेदान्त में कथित मानव की एकात्मता के इस तत्व को प्रस्तुत किया था। (विवेकानन्द साहित्य-खण्ड 5,पृ0-135,136)। जब वे अमेरिका में चार वर्षों तक कार्यरत रहे, उस समय उनके एक अंग्रेज मित्र ने इस आशय का पत्र लिखा कि आप वहंा और कब तक रहेंगे? अपनी अपनी मातृभूमि भारत को लौट जाइए, वहंा स्वदेश में आपके लिए बहुत सा कार्य बाकी पड़ा हुआ है। इसके उत्तर में उन्होंने 9 अगस्त 1895 ई0 को जो पत्र लिखा था, उसमें उनकी अन्तर्राष्ट्रीय अभिरूचि, सहानुभूति

www.ignited.in

तथा उनका उदार मानववाद अभिव्यक्त हो उठता है।(विवेकानन्द साहित्य,खण्ड 4,पृ0-337,338)

नस्संदेह मुझे भारत से प्रेम है। परन्तु दिन-प्रतिदिन मेरी दृष्टि स्पष्टतर होती जा रही है। हमारे लिए भारत या इंगलैंड या अमेरिक क्या है? हम तो उस प्रभु के दास हैं जिसे अज्ञानी कहते हैं 'मनुष्य'। जो जड़ में पानी डालता हैं, वह क्या पूरे वृक्ष को नही सींचत? सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक कल्याण की एक ही नींव है और वह है जानना कि 'मैं और मेरा भाई एक है'। यह सब दश्शों और सब जातियों के लिए सत्य है।और में यह कह सकता हुं कि पश्चिमी लोग पूर्वीयों से शीघ्र इसका अनुभव करेंगे। वे पूर्वीय लोग, जिन्होंने इस नींव के निर्माण में तथा कुछ थोड़े से अनुभूति सम्पन्न व्यक्तियों को उत्पन्न करने में प्रायः अपनी सारी शक्ति व्यय कर दी है। कैसा अद्भुत विचार है! पूर्णतः भारतीय होकर भी वे मात्र भारतीय नही रहे।इस कारण आज हम देखते हैं कि बहुत से अमरीकी स्वामी विवेकानन्द को अमेरिका का ही अंग-प्रत्यंग मानते हैं। 1890 ई0 के बाद कुछ वर्षों में विवेकानन्द ने अमेरिका की यात्रा करते हुए वहाँ के भैतिकवादी समाज का एक गूढ मूल्यांकन किया था।तथा अपने अमरीकी श्रोताओं को सम्मोहित कर दिया था। 2 नवम्बर,1893 ई0 को शिकागो से लिखे गये स्वामी विवेकानन्द के पत्र का निम्नांश अमरीकी मानवीय प्रयोग के बारे में उनका मूल्यांकन प्रकट करता है। (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड 2,पृष्ठ 311) अमेरिकनों में भी दोष है और दोष किस जाति में नही है? परन्तु मेरा निष्कर्ष यह है-एशिया ने सभ्यता की नींव डाली, युरोप ने पुरूषों की उन्नति की और अमेरिका महिलाओं और जनसाधारण की उन्नति कर रहा है। यह महिलाओं और श्रमजीवियों का स्वर्ग है। अमरीकी लोग द्रुतगति से उदारमना होते जा रहे हैं-और यह महान राष्ट्र शीघ्रता से उस अध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता जा रहा है, जिसका हिन्दुओं को गौरवपूर्ण अभिमान है।स्वामी जी भारत भक्त होते हुए भी उतने ही विश्वभक्त भी थे। स्वामी जी की दृष्टि में हिन्दुत्व और मानवतावाद में कोई भी भेद न देखकर एक दूसरे के पूरक ही मानते थे। भारतीय संस्कृति की यही विशेषता अपने अल्पकाल के जीवन में सारे विश्व में प्रचार-प्रसार करते रहे। विश्व प्रसिद्व मनीषी, समाज सुधारक, क्रान्तिकारी और दरिद्र नायारण की सेवा में तल्लीन अनेक महापुरूषों के प्ररेणा केन्द्र थे स्वामी विवेकानन्द। लियो टालस्टाय, रविन्द्रनाथ ठाकुर, श्री अरविन्द, ब्रहाबान्धव उपाध्याय, लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, महात्मा गांधी, प0 जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस, विनोवा भावे, रोमां रोलां, बिल डुराण्ट, चक्रवर्ती रातगोपालाचार्य, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, रमेश चन्द्र माजूमदार, सुनीति कुमार चट्टोपाल्याय, डा0 ए. एल बासम, ई. पी. चेतीशेव, हुआंग जिन चुयान आदि तथा ओर भी बहुत महरपुरूषों ने उनका कई बातों में अनुसरण करने का प्रयास किया।

स्वामी जी ने भारत की आत्मा को भली-भांति समझने का प्रयास किया और उसे ही आतमसात भी किया और चुंकि भारतीय दर्शन एंव संस्कृति सर्व-कल्याण की संदेश वाहक रही इसलिए उनके विचार देश, कौम, समाज, धर्म तथा मानव मात्र के कल्याण और प्रत्येक प्राणी मात्र के कल्याण हेतु ही आगे बहुत समय से मृत्य तो नही प्रायः सुप्त हो चुके भारतीय विचारों को सारे विश्व में प्रसारित किया। भारत का कल्याण और उसके द्वारा सारे विश्व का कल्याण जेसा अति पावन लक्ष्य अपने सम्मुख रखते हुए आजीवन इस बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य करते हुए स्वामी जी सर्वमान्य व्यक्तित्व की छाप अंकित कर गये।

सन्दर्भ

Paul 2003, पृ॰ 5.

Banhatti 1995, पृ॰ 1.

Badrinath 2006, पृ॰ 3.

Bhuyan 2003, पृ॰ 4.

Nikhilananda 1964.

Corresponding Author

Dr. Vivek Kumar*

Professor and Head, Swami Vivekananda Chair Central University, Jammu